ब्रह्महेमचंद्रविरचित

श्रुत-स्कंध

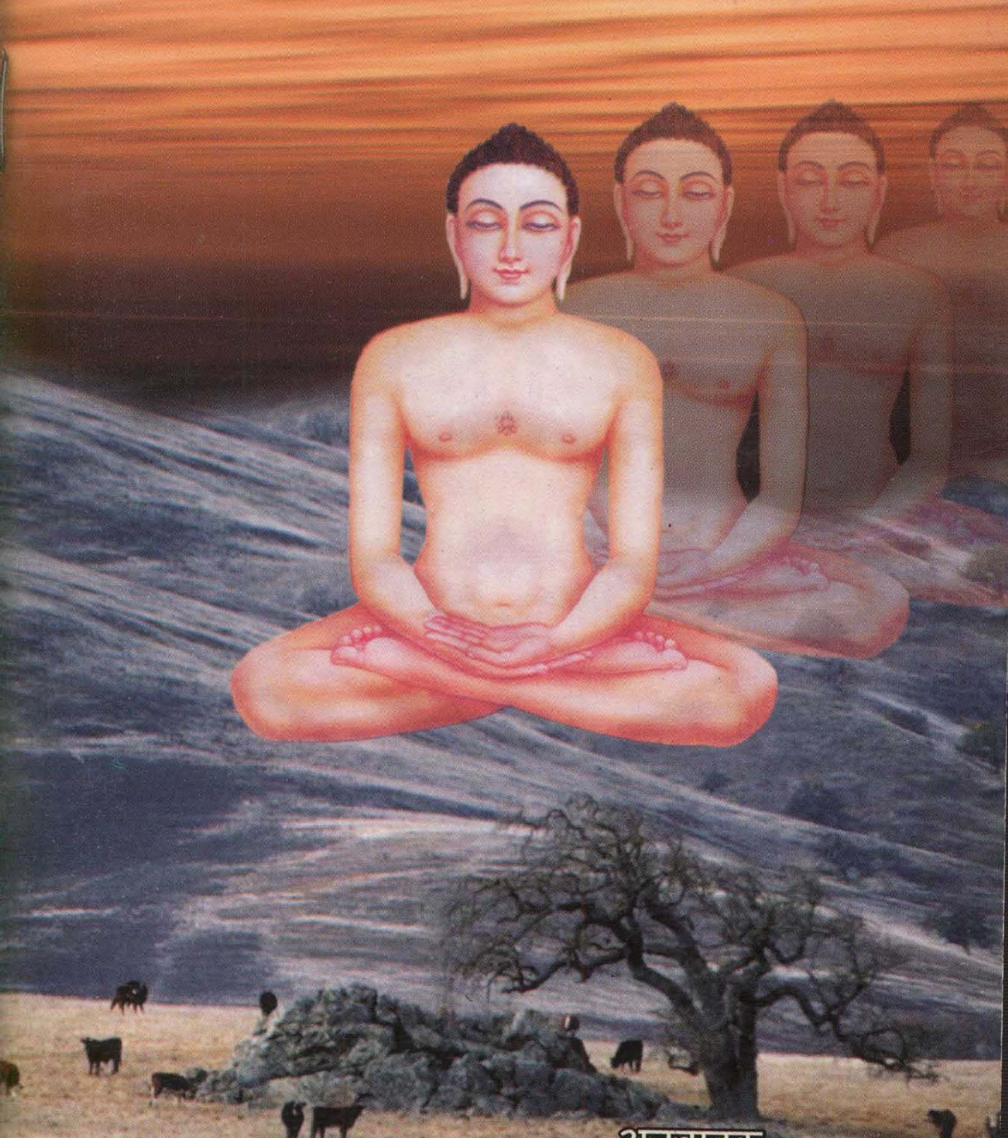

अनुवादक

ब्र. विनोद जैन, ब्र. अनिल जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्महेमचंद्र विरचितः

श्रुत-स्कंधः

मूल संपादक

स्व. पं. पन्नालाल वाकलीवाल

◆

अनुवादक

ब्र. विनोद जैन "शास्त्री"   ब्र. अनिल जैन "शास्त्री"

श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल

पिसनहारी, जबलपुर

◆

प्रकाशक

गंगवाल धार्मिक ट्रस्ट

नयापारा, रायपुर (छत्तीसगढ़)

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कृति - श्रुत-स्कंध

प्रणेता - ब्रह्महेमचंद्र

मूल संपादक - स्व. पं. पन्नालाल वाकलीवाल

अनुवादक - ब्र. विनोद कुमार जैन "पपौरा"
ब्र. अनिल कुमार जैन "जबलपुर"

प्रथम संस्करण- 1000 प्रतियाँ मूल्य - स्वाध्याय

वीर निर्वाण सन् 2002

प्राप्ति स्थल -

1. ब्र. विनोद कुमार जैन
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
पपौरा जी, जिला टीकमगढ़

2. श्री सनत जैन
श्री केसरी लाल कस्तूरचंद गंगवाल
नयापारा, रायपुर

3. ब्र. जिनेश जैन/ब्र. अनिल जैन
श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल
पिसनहारी, जबलपुर

मुद्रक : सोलार आफसेट, जबलपुर फोन - 0761-2651995

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुवादक की ओर से ...

माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला से तत्त्वानुशासनादि संग्रह नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ था जिसमें ब्रह्महेमचंदविरचित - "श्रुत-स्कंध" नामक लघुकाय ग्रंथ का प्रकाशन किया गया है। इस ग्रंथ के संक्षिप्त परिचय की अनुक्रमणिका में श्री नाथूलाल प्रेमी जी ने पं. पन्नालाल वाकलीवाल से प्रेस कॉपी की प्राप्ति सूचना दी है, तथा इस सम्पूर्ण संग्रह में प्रकाशित ग्रंथों के संशोधक पं. मनोहरलाल शास्त्री हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस मूल ग्रंथ का संपादन पं. पन्नालाल वाकलीवाल जी ने किया है। 'श्रुत-स्कंध' नामक इस ग्रंथ का अनुवाद मुझे कहीं भी देखने में नहीं आया था। विज्ञ लोगों से जानकारी के पश्चात् यही ज्ञात हुआ कि इसका अनुवाद नहीं हुआ है। मैंने और ब्र. अनिल जी ने अतिशय क्षेत्र पपौरा जी में ग्रंथ के अनुवाद का विचार ग्रीष्मकाल में किया था, किन्तु जैनेन्द्र लघु प्रक्रिया के अनुवाद की व्यस्तता के कारण इस कार्य को नहीं कर सके। पश्चात् दीपमालिका के अवसर पर इस कार्य को पूर्ण करने का विचार बना और फलस्वरूप यह कार्य सम्पन्न हो गया। यह सब कुछ प्रातः स्मरणीय आचार्य श्री विद्यासागर जी एवं विद्यागुरु पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य के ही आशीष का फल है, जिससे यह कार्य निर्विघ्न रीति से सम्पन्न हो गया।

ग्रंथ में प्रतिपाद्य विषय -

श्रुतस्कंध नामक इस ग्रंथ में बारह अंग रूप श्रुत का स्वरूप क्रमानुसार निरूपित किया गया है। पश्चात् भगवान महावीर से लेकर आचार्य पुष्पदंत, भूतबलि, श्रुतधर आचार्य परम्परा का निरूपण किया गया है।

ग्रंथ में विशेषताएँ -

- गाथा संख्या 43 में सत्यप्रवादपूर्व के पदों की संख्या एक करोड़ आठ पद दी गई है, जबकि धवला तथा जीवकाण्ड में सत्यप्रवादपूर्व के पदों की संख्या एक करोड़ छः दी गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- ग्रंथकार ने गाथा संख्या 79 में अंगांशधर ज्ञान को धारण करने वाले अर्हद् नाम के मुनि हुए। अर्हद्मुनि के पश्चात् माघनन्दि का उल्लेख न करते हुए, आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) का उल्लेख किया है और आचार्य भद्रबाहू के पश्चात् धरसेनाचार्य का उल्लेख किया है। यह परम्परा प्राप्त श्रुत परम्परा से कुछ भिन्न-सी प्रतीत होती है। क्योंकि अर्हद्वलि के पश्चात् ग्रंथों में माघनन्दि आचार्य का उल्लेख स्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है।
- गाथा संख्या 88 में धवला ग्रंथ 70,000 हजार श्लोक प्रमाण बताई गई है, जबकि धवला 72,000 हजार श्लोक प्रमाण हैं, तथा इसी कारिका में महाबंध 40,000 श्लोक प्रमाण बताया गया है।

इस ग्रंथ के ग्रंथकार के विषय में कुछ विशेष परिचय उपलब्ध नहीं हो सका। आपने अपने गुरु आचार्य रामनन्दि का उल्लेख गाथा संख्या 92 में किया है। इतिहास में रामनन्दि का उल्लेख माणिक्यनन्दि के गुरू के रूप में प्राप्त होता है। जिनका समय ई. सन् 10-11 प्राप्त होता है। ब्रह्महेमचंद का काल निर्धारण का विषय विशेष अन्वेषणीय है।

इस ग्रंथ का कार्य करते समय ब्र. राजेन्द्र जैन पठा का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ उनका मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल, जबलपुर के अधिष्ठाता ब्र. जिनेश जी का उपयोगी सामग्री की प्राप्ति में विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है। उनका तथा सभी सज्जनों का जिनका की इस कार्य में सहयोग प्राप्त हुआ है, उनका मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

आशा है कि इस ग्रंथ का लाभ विद्वत् वर्ग के साथ-साथ जन सामान्य भी करेंगे। शब्द अथवा अर्थ जन्य त्रुटियाँ यदि रह गई हों तो विज्ञजन सूचित करने की अनुकम्पा करें।

- ब्र. विनोद जैन

- ब्र. अनिल जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्महेमचंद्रविरचितः

श्रुतस्कंधः

रिसहाइवीरअंतहं चउवीसजिणाण णमहु पयजुयलं।
बारस अंगाइं सुदं कमविहियं भविय णिसुणेहु ॥1॥

अर्थ :- ऋषभ आदि वीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों के चरण युगलों को नमस्कार कर, शास्त्रोक्त क्रमानुसार बारह अंग रूप श्रुत के स्वरूप को कहूँगा। भव्य जीव ध्यानपूर्वक सुनें।

उसप्पिणिअवसिप्पणिकालदुगं जाण दक्खिणे भरहे।
सायरकोडाकोडी–अट्ठदसं भोयभूमिगया ॥2॥
पल्लस्सट्ठमभाएचउदहणं कुलयराण उप्पत्ती।
अंतिल्लणाहिणामो तस्स तिया णाम मरुदेवी ॥3॥

अर्थ :- दक्षिण भरत क्षेत्र में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी नाम के दो काल जानों। इन दोनों के (उत्सर्पिणी 10 + अवसर्पिणी 8) = 18 कोड़ाकोड़ी सागर व्यतीत हो जाने पर तथा भोग भूमि के (जघन्य भोगभूमि) पल्य के आठवें भाग के शेष रहने पर चौदह कुलकरों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पत्ति हुई। जिसमें अन्तिम कुलकर का नाम नाभिराय था तथा उनकी पत्नी का नाम मरुदेवी था।

विशेषार्थ - एक कल्पकाल 20 कोड़ा कोड़ी सागर का होता है, उसके दो भेद होते हैं - उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। प्रत्येक के 6 भेद होते हैं। इसमें उत्सर्पिणी काल 10 कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है तथा अवसर्पिणी भी 10 कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। उत्सर्पिणी के 10 कोड़ा-कोड़ी सागर व्यतीत हो जाने पर एवं अवसर्पिणी के उत्तम, मध्यम भोगभूमि काल के व्यतीत होने पर तथा जघन्य भोगभूमि संबंधी काल के पल्य के आठमें भाग शेष रहने पर कुलकरों की उत्पत्ति होना प्रारम्भ होती है। जिसमें अंतिम कुलकर नाभिराय हुये थे। उनकी पत्नी का नाम मरुदेवी था।

सुसमदुसमाइअंते वासतयं अट्ठमासपक्खा य।
चुलसीदिलक्खपुव्वं णाहीसुयरिसहउप्पत्ती ॥4॥

अर्थ :- सुषमा दुषमा (जघन्य भोगभूमि) काल के अंत में 84 लाख पूर्व तीन वर्ष 8 माह और एक पक्ष शेष रहने पर नाभिराय कुलकर के ऋषभ नाम के पुत्र की उत्पत्ति हुई।

वीसं लक्खं पुव्वं वालत्तणि रज्जि लक्खतेसट्ठी।
णीलंजसाविणासो दिट्ठो संसारविरदो य॥5॥

लइओ चरित्तभारो छदमत्थे वरससहसु गउकालो।
केवलणाणुप्पणो देवागमु तत्थ संजादो॥6॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**समवसरणपरियरियो विहरइ गणसहिउ भव्व वोहंतो।
पुणु सुदु अणाइणिहणं रिसहजिणो तत्थ पयडेइ ॥7॥**

अर्थ :- ऋषभ कुमार ने 20 लाख पूर्व बाल अवस्था में व्यतीत कर, 63 लाख पूर्व तक राज्य किया। एक दिन नीलांजना नाम की नृत्यकी का मरण देखकर संसार के दु:खों से विरक्त हो गये तथा चारित्र ग्रहण कर 12 हजार वर्ष छद्मस्थ अवस्था में रहे। तत्पश्चात् केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर देवों का आगमन हुआ। समवशरण से परिकृत, 12 सभाओं से सहित भव्य जीवों को संबोधन के लिए बिहार किया। श्रुत अनादि निधन है, उस ही श्रुत को ऋषभ देव ने पुन: प्रगट किया।

**अवगहईहावाओधारण इंदियमणे बहुविहादी।
छत्तीसा तिण्णिसया भेया मदिपुव्वसत्थोयं ॥8॥**

336

अर्थ :- अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा, पाँच इन्द्रियाँ, एक मन तथा बहुविध आदि 12 पदार्थों का परस्पर में गुणा करने पर 336 प्रकार का मतिज्ञान होता है तथा श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है।

**वयसमिदिगुत्तियादी आयारंगं कहेइ सविसेसं।
अट्ठारसहस्सपयं भवियजणा णबहु भावेण ॥9॥**

18000

अर्थ :- व्रत, समिति और गुप्ति आदि का विस्तारपूर्वक कथन 18 हजार पदों द्वारा आचारांग करता है। भव्यजन मन, वचन और काय से भावपूर्वक उसे नमस्कार करो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ - आचारांग के अठारह हजार पदों के द्वारा यह बतलाया गया है कि किस प्रकार चलना चाहिए? किस प्रकार खड़े रहना चाहिए, किस प्रकार बैठना चाहिए? किस प्रकार शयन करना चाहिए? किस प्रकार भोजन करना चाहिए? किस प्रकार संभाषण करना चाहिए? जिससे कि पाप का बन्ध नहीं होता।

यत्नपूर्वक चलना चाहिए, यत्नपूर्वक ठहरना चाहिए, यत्नपूर्वक बैठना चाहिए, यत्नपूर्वक सोना चाहिए, यत्नपूर्वक भोजन करना चाहिए और यत्नपूर्वक भाषण करना चाहिए, इस प्रकार पापबन्ध नहीं होता। इस आचारांग में चर्याविधि आठ शुद्धियाँ, पाँच समितियों और तीन गुप्तियों के भेदों की प्ररूपणा की जाती है, इस प्रकार यह मुनियों के आचरण का वर्णन करता है।

णाणं तह विणयादी किरियाविविहं परूवणं भणियं।
छत्तीसं च सहस्सा सुद्दयडपयं णमंसामि॥10॥
36000

अर्थ :- ज्ञान तथा विनयादि विविध क्रियाओं का विवेचन 36 000 पदों के द्वारा जो श्रुतज्ञान करता है। ऐसे सूत्रकृतांग को मैं नमस्कार करता हूँ।

विशेषार्थ - छत्तीस हजार पद प्रमाण सूत्रकृतांग में ज्ञानविनय, प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्य, छेदोपस्थापना और व्यवहार धर्म क्रियाओं की दिगन्तर शुद्धि से प्ररूपणा की जाती है। तथा यह स्वसमय और परसमय का भी निरूपण करता है। यह अंग स्त्री संबंधी परिणाम, क्लीवता, अस्फुटत्व, काम का आवेश, विलास, आस्फालन-सुख और पुरुष की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्छा करना आदि स्त्री के लक्षणों का प्ररूपण करता है।

जीवमजीवं दव्वं धम्माधम्मं च कालमायासं।
वायालसहस्सपयं ठाणं पडिवायकं ठाणं ॥11॥
42000

अर्थ :- जो श्रुत जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य के (एक को आदि लेकर एकोत्तर क्रम से) स्थानों का 42,000 पदों के द्वारा वर्णन करता है, वह स्थानांग है।

विशेषार्थ - यह अंग बयालीस हजार पदों के द्वारा जीव और पुद्गल आदि के एक को आदि लेकर एकोत्तर क्रम से स्थानों का वर्णन करता है। यह जीव महात्मा अविनश्वर चैतन्य गुण से अथवा सर्वजीव साधारण उपयोगरूप लक्षण से युक्त होने के कारण एक है। वह ज्ञान और दर्शन, संसारी और मुक्त अथवा भव्य और अभव्य रूप दो भेदों से दो प्रकार का है। ज्ञानचेतना, कर्मचेतना और कर्मफलचेतना की अपेक्षा, उत्पादव्ययध्रौव्य की अपेक्षा अथवा द्रव्यगुणपर्याय की अपेक्षा तीन प्रकार का है। नरकादि चार गतियों में परिभ्रमण करने के कारण चार संक्रमणों से युक्त है। औपशमिक आदि पाँच भावों से युक्त होने के कारण पाँच भेद रूप है। मरण समय में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व व अध: इन छह दिशाओं में गमन करने रूप छह अपक्रमों से सहित होने के कारण छह प्रकार है। चूंकि सात भंगों से उसका सद्भाव सिद्ध है, अत: वह सात प्रकार है। ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के आस्रव से युक्त होने अथवा आठ कर्मों या सम्यक्त्वादि आठ गुणों का आश्रय होने से आठ प्रकार का है। नौ पदार्थ रूप परिणमन करने की अपेक्षा नौ प्रकार है। पृथिवी, जल, तेज, वायु, प्रत्येक व साधारण वनस्पति, द्वीन्द्रिय,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय रूप दस स्थानों में प्राप्त होने से दस प्रकार का है कहा गया।

दव्वे धम्माधम्मे लोयायासेहिं चेय जीवाणं।
खित्ते जंबूदीवे कालो उसप्पिणिदुगादो ॥12॥

भावे दंसणणाणं भावे पडियायकं समवायं।
अडकिदिसहस्सलक्खं पयसंखा थुणहं णियमेण ॥13॥
164000

अर्थ :- समवाय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से चार प्रकार का होता है। प्रथम द्रव्य समवाय का कथन इस प्रकार है :- धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश और एक जीव के प्रदेश परस्पर समान है, इसी प्रकार जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्धि इनके समान रूप से एक लाख योजन विस्तार की अपेक्षा क्षेत्र समवाय है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल के समय परस्पर समान है, यह काल समवाय है। केवलज्ञान, केवलदर्शन के बराबर है, यह भाव समवाय है। इस प्रकार जिस अंग में एक लाख चौंसठ हजार पदों द्वारा सर्व पदार्थों की समानता का विचार किया जाता है। ऐसे समवायांग की मैं नियम से स्तुति करता हूँ।

विशेषार्थ - समवायांग में एक लाख चौंसठ हजार पदों द्वारा सर्व पदार्थों की समानता का विचार किया जाताहै। वह समवाय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से चार प्रकार का है। उनमें से प्रथम द्रव्य समवाय का कथन इस प्रकार है - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश और एक जीव, इन द्रव्यों के समान रूप से असंख्यातप्रदेश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने से एक प्रमाण से द्रव्यों का समवाय होने के कारण द्रव्यसमवाय कहा जाता है। जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्धि, अप्रतिष्ठान नरक और नन्दीश्वरद्वीपस्थ एक वापी, इनके समान रूप से एक लाख योजन विस्तान प्रमाण की अपेक्षा क्षेत्रसमवाय होने से क्षेत्रसमवाय है। सिद्धि क्षेत्र, मनुष्य क्षेत्र, ऋतुविमान और सीमन्त नरक, इनके समान रूप से पैंतालीस लाख योजन विस्तार प्रमाण से क्षेत्रसमवाय है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालों के समान दस सागरोपम कोड़ा-कोड़ि समान दस सागरोपम कोड़ा-कोड़ि प्रमाण की अपेक्षा कालसमवाय होने से काल समवाय है। क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और यथाख्यातचारित्र, इनका जो भाव उसके अनुभव के तुल्य अनन्त प्रमाण होने का कारण भवसमवाय होने से भावसमवाय है।

किं अत्थि णत्थि जीवो गणहरसट्ठीसहस्सकयपण्हा।
अडदुगदोयतिसुण्णं पयसंखविवायपण्णत्ती ॥14॥
228000

अर्थ :- गणधर परमेष्ठी द्वारा कृत क्या जीव है? क्या जीव नहीं है? इत्यादि साठ हजार प्रश्नों के उत्तरों का जिसमें कथन पाया जाता है तथा जिसकी पद संख्या दो लाख अट्ठाइस हजार है, वह व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक अंग है।

विशेषार्थ - दो लाख अट्ठाईस हजार पद प्रमाण व्याख्याप्रज्ञप्ति में क्या जीव है, क्या जीव नहीं है, जीव कहाँ उत्पन्न होता है और कहां से आता है, इत्यादिक साठ हजार प्रश्नों के उत्तरों का निरूपण किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिच्छयरगणहराणं धम्मकहाऊ कहंति णित्ताओ।
छप्पण्णं च सहस्सा पणलक्खा सुयपयं वंदे ॥15॥
556000

अर्थ :- जो श्रुतज्ञान नियम से तीर्थंकरों की तथा गणधर देवों की धर्म कथाओं को पाँच लाख छप्पन हजार पदों के द्वारा कथन करता है, ऐसे ज्ञातृधर्मकथा अंग की मैं वंदना करता हूँ।

विशेषार्थ - पाँच लाख छप्पन हजार पद युक्त ज्ञातृधर्मकथांग में सूत्रपौरुषी अर्थात् सिद्धान्तोक्त विधि से स्वाध्याय के प्रस्थापन में भगवान् तीर्थंकर की तालु व औष्ठपुट के हलन-चलन के बिना प्रवर्तमान समस्त भाषाओं स्वरूप दिव्यध्वनि द्वारा दी गई धर्मदेशना की विधि का, संशय युक्त गणधर देव के संशय को नष्ट करने की विधि का तथा बहुत प्रकार कथा व उपकथाओं के स्वरूप का कथन किया जाता है।

सदरिं सहस्सलक्खं एयारहपयहसंखपरिमाणं।
सावयवयं विसेसं तं भणियमुवासयज्झयणं ॥16॥
1170000

अर्थ :- ग्यारह लाख सत्तर हजार संख्या प्रमाण पदों के द्वारा जो अंग श्रावक के व्रतों का विस्तारपूर्वक वर्णन करता है, उसे उपासकाध्ययन अंग कहते है।

विशेषार्थ - ग्यारह लाख सत्तर हजार पद प्रमाण उपासकाध्ययनांग में ग्यारह प्रकार श्रावक धर्म-दर्शन, व्रत, सामायिक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रोषध, सचितविरति, रात्रिभक्तविरति, ब्रह्मचर्य, आरम्भविरति, परिग्रहविरति, अनुमतिविरति और उद्दिष्टविरति यह ग्यारह प्रकार का देशचारित्र, इसका विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है।

तेवीसं अडवीसं लक्खसहस्साउ सुपयमंतकयं।
अंतयडदसदस मुणे तित्थे तित्थे णमंसामि ॥17॥
2328000

अर्थ :- तेईस लाख अट्ठाईस हजार पदों के द्वारा एक-एक तीर्थंकर के तीर्थ से नाना प्रकार के उपसर्गों को सहन कर निर्वाण को प्राप्त दस-दस मुनियों का जो अंग वर्णन करता है, वह अन्तकृद्दशांग है, उसे मैं नमस्कार करता हूँ।

विशेषार्थ - जिन्होंने संसार का अन्त कर दिया है वे अन्तकृत् कहे जाते हैं। नमि, मतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्कंविल, पालम्ब और अष्टपुत्र ये दस वर्धमान तीर्थंकर के तीर्थ में अन्तकृत् हुए है। इसी प्रकार वृषभादिक तेईस तीर्थंकरों के तीर्थ में भिन्न भिन्न दस अन्तकृत् हुए है। इस प्रकार दस दस अनगार घोर उपसर्गों को जीतकर समस्त कर्मों के क्षय से अन्तकृत् होते हैं। चूंकि इस अंग में उन दस दस का वर्णन किया जाता है अतएव वह अन्तकृद्दशांग कहलाता है।

बाणउदिलखसहस्सा चउदालं पयमणुत्तरे णवंमि।
पडितिच्छेदसदस मुणिउ सग्गाणुत्तरे पत्ता ॥18॥
9244000

अर्थ :- बानवें लाख चवालीस हजार पदों द्वारा एक-एक तीर्थ में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाना प्रकार के उपसर्गों को सहकर पाँच अनुत्तर विमानों में गये दस-दस मुनियों का जो वर्णन करता है, उसे अनुत्तरौपपादिक दशांग नामक अंग कहते हैं, उसे मैं नमस्कार करता हूँ।

विशेषार्थ - उपपाद अर्थात जन्म ही जिनका प्रयोजन है वे औपपादिक कहलाते हैं। विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये पाँच अनुत्तर हैं। अनुत्तर में उत्पन्न होने वाले अनुत्तरौपपादिक कहे जाते हैं। ऋषिदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिक, नन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण और चिलातपुत्र ये दस वर्धमान तीर्थंकर के तीर्थ में अनुत्तरौपपादिक हुए हैं। इसी प्रकार ऋषभादिक तेईस तीर्थंकरों के तीर्थ में भिन्न भिन्न दस अनुत्तरौपपादिक हुए हैं। इस प्रकार दस दस अनगार भयानक उपसर्गों को जीतकर विजयादिक अनुत्तरों में उत्पन्न हुए हैं। चूंकि इस प्रकार इसमें दस दस अनुत्तरौपपादिक अनगारों का वर्णन किया जाता है। अतः वह अनुत्तरौपपादिकदशांग कहलाता है।

चउवग्गं तेणवदी सुणतंयं सपयपण्हवायरणं।
णट्ठमुट्ठादिपण्हा जाणदि दसमो य अंगोवि ॥19॥

9316000

अर्थ :- जो अंग श्रुत तेरानवें लाख सोलह हजार पदों के द्वारा नष्ट, मुष्टि आदि प्रश्नों के पूछने पर उनके उपाय का वर्णन करता है। वह प्रश्न व्याकरण नामक दशवाँ अंग है।

विशेषार्थ - जो प्रश्नों का व्याकरण अर्थात् उत्तर जिसमें हो वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नव्याकरण है। तेरानवें लाख सोलह हजार पद युक्त उसमें प्रश्न के आश्रय से नष्ट, मुष्टि, चिन्ता, लाभ, अलाभ, सुख, दुख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु व संख्या की तथा लौकिक एवं वैदिक अर्थों के निर्णय की प्ररूपणा की जाती है। इसके अतिरिक्त आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदनी इन कथाओं की भी प्ररूपणा की जाती है।

चुलसीदिसयसहस्सा कोडिपयं तह विवायसुत्तं वा।
सादासादविवायं सूययरं णमहु भावेण ॥20॥

18400000

अर्थ :- जो अंग श्रुत एक करोड़ चौरासी लाख पदों के द्वारा सातावेदनीय (पुण्यकर्म) और असातावेदनीय (पापकर्म) के फलों का वर्णन करता है। मैं उसे भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

सुण्णतियं दुगसुण्णं पणेक्कचउकोडिमाण सव्वपयं।
एयारसअंगादी पणमामि तिसुद्धिसुद्धेण ॥21॥
41502000

अर्थ :- सभी ग्यारह अंगों के कुल पदों का जोड़ चार करोड़ पन्द्रह लाख दो हजार पद है। मैं उन सभीं पदों को मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

परियम्मसुत्तपुव्वंगपढमाणिओय चूलिया सहिया।
पंचपयारं भणियं दिट्ठिबादं जिणिंदेहिं ॥22॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :- जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बारहवें दृष्टिवाद अंग के परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका ये पाँच भेद कहे गये हैं।

विशेषार्थ - बारहवां अंग दृष्टिप्रवाद है। कौत्कल, काणविद्धि, कौशिक, हरिश्मश्रु, मांथपिक, रोमश, हारित, मुण्ड और आश्वलायनादिक क्रियावाददृष्टियों के एक सौ अस्सी मरीचिकुमार, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वाद्वलि, माठर और मौद्गल्यायन आदि अक्रियावाद दृष्टियों के चौरासी, शाकल्य, वल्कलि, कुथुमि, सात्यमुग्रि, नारायण, कण्व, माध्यंदिन, मोद, पिप्पलाद, बादरायण, स्विष्टिकृत, ऐतिकायन, वसु और जैमिनी आदि अज्ञानिक दृष्टियों के सड़सठ वशिष्ठ, पाराशर, जतुकर्ण, वाल्मीकि, रोमहर्षणि, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यव, ऐन्द्रदत्त और अयस्थूण आदि वैनयिक दृष्टियों के बत्तीस इन तीन सौ तिरेसठ मतों की प्ररूपणा और उनका निग्रह दृष्टिवाद अंग में किया जाता है।

चंदाउपमुहवादी पंचसहस्साइं लक्खछत्तीसा।
पदपरिमाणपमाणं सा जाणहु चंदपण्णत्ती ॥23॥
3605000

अर्थ :- जो परिकर्म छत्तीस लाख पाँच हजार प्रमाण पदों के द्वारा चन्द्रमा की आयु आदि का प्रमुखता से वर्णन करता है वह चन्द्र प्रज्ञप्ति नाम का परिकर्म है।

विशेषार्थ - छत्तीस लाख पाँच हजार पद प्रमाण चन्द्रप्रज्ञप्ति में चन्द्रबिम्ब उसके मार्ग, आयु व परिवार का प्रमाण, चन्द्रलोक, उसका गमन विशेष, उससे उत्पन्न होने वाले चन्द्र दिन का प्रमाण, राहु और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रबिम्ब में प्रच्छाद्य-प्रच्छादक विधान अर्थात् राहु द्वारा होने वाले चन्द्र के आवरण की विधि और वहां उत्पन्न होने का कारण इस सबकी प्ररूपणा की जाती है।

सूरस्स य परिवारं आउगईचारगइसुखेत्तादी।
सहसतियं पणलक्खं पयसंखा सूरपण्णत्ती ॥24॥

503000

अर्थ :- जो परिकर्म पाँच लाख तीन हजार पदों के द्वारा सूर्य के परिवार आयु, गति, परिभ्रमण क्षेत्र, सुख आदि का वर्णन करता है, उसे सूर्यप्रज्ञप्ति नाम का परिकर्म जानना चाहिए।

विशेषार्थ – सूर्य प्रज्ञप्ति में सूर्य बिम्ब उसके मार्ग, परिवार और आयु का प्रमाण, उसकी प्रभा की वृद्धि एवं ह्रास का कारण, सूर्य संबंधी दिन, मास, वर्ष, युग और अयन के निकालने की विधि तथा राहु व सूर्य बिम्ब की प्रच्छाद्य-प्रच्छादकविधि, उसकी गति विशेष, ग्रह छायाकाल और राशि के उदय का विधान इस सबका निरूपण किया जाता है।

जंबू जोयणलक्खो कुलसेलसुखित्तभोयभूमादी।
पणवग्गतियतिसुण्णं पय जंबूदीवपण्णत्ती ॥25॥

325000

अर्थ :- जो परिकर्म एक लाख योजनप्रमाण जम्बूद्वीप के कुलाचल, सुक्षेत्र (भरतादि क्षेत्र) तथा भोगभूमि का तीन लाख पच्चीस हजार पदों के द्वारा वर्णन करता है, उसे जम्बूद्वीप नाम का परिकर्म जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ - जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में कुलाचल, क्षेत्र, तालाब, चैत्य, चैत्यालय तथा भरत व ऐरावत में स्थित नदियों की संख्या का निरूपण किया जाता है।

बावण्णं छत्तीसं लक्खसहस्सं पदस्स परिमाणं।
दीवअसंखसमुद्दा भणिया दीउवहिपणत्ती ॥26॥
5236000

अर्थ :- जो परिकर्म बावन लाख छत्तीस हजार पदों के द्वारा असंख्यात द्वीप और समुद्रों का वर्णन करता है, उसे द्वीप सागर प्रज्ञप्ति परिकर्म कहते है।

विशेषार्थ - द्वीप सागरप्रज्ञप्ति में द्वीप-समुद्रों की संख्या, उनका आकार, विस्तार उनमें स्थित जिनालय, व्यन्तरों के आवास तथा समुद्रों के जल विशेषों का निरूपण किया जाता है।

लेस्सातियचउकम्मं पयाण संखा य सुण्णतयसहिया।
छद्दव्वाइसरूवं भासंति विवायपण्णत्ती ॥27॥
8436000

अर्थ :- जो परिकर्म चौरासी लाख छत्तीस हजार पदों के द्वारा छह द्रव्यों के स्वरूप का वर्णन करता है, उसे व्याख्या प्रज्ञप्ति परिकर्म कहते हैं।

विशेषार्थ - व्याख्याप्रज्ञप्ति में रूपी अजीव द्रव्य, अरूपी अजीव द्रव्य तथा भव्य एवं अभव्य जीवों के स्वरूप का निरूपण किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इगकोडिपणसहस्सा सीदीइगिअहियलक्खपरिमाणं।
एवं पंचपयारं परियम्मं णिच्छयं जाण ॥28॥

18105000

अर्थ :- इस प्रकार उपर्युक्त पाँच प्रकार के परिकर्म के पदों का जोड़ एक करोड़ इक्यासी लाख पाँच हजार है जानना चाहिए।

द्वादशांगस्य य दृष्टिवादस्य प्रथमपरिकर्म्म
तस्य भेदाः पंच कथिताः ॥ ७ ॥

इस प्रकार द्वादशांग के दृष्टिवाद नाम के प्रथम परिकर्म के पाँच भेद कहे गये।

अडसीदी लक्खपयं कत्ता भुत्ता य कम्मफल जीवो।
सव्वगयादियधम्मो सुत्तयडो फेडणो होइ ॥29॥

8800000

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान अठासी लाख पदों के द्वारा जीव को कर्म फल का कर्त्ता, भोक्ता, सर्वादिगत धर्म इत्यादि का निरूपण करता है, वह सूत्र नामक दृष्टिवाद का अर्थाधिकार है।

विशेषार्थ - सूत्र अधिकार में सब मतों का निरूपण किया जाता है। इसके अतिरिक्त जीव अबन्धक है, अलेपक है, अभोक्ता है, अकर्ता है, निर्गुण है, व्यापक है, अद्वैत है, जीव नही है, जीव (पृथिवी आदि चार भूतों के) समुदाय से उत्पन्न होता है, सब नहीं है अर्थात् शून्य है, बाह्य पदार्थ नहीं है, सब निरात्मक है, सब क्षणिक है, सब अक्षणिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् नित्य है अथवा अद्वैत है, इत्यादि दर्शन भेदों का भी इसमें निरूपण किया जाता है।

पणअहियं पणसुण्णं पणपणणवअंकपुव्वपरिमाणं।
उप्पायवयधुवाणं पुव्वग्गयपुव्वगं वंदे ॥30॥

955000005

अर्थ :- पूर्वगत नामक दृष्टिवाद नाम का अर्थाधिकार पंचानवें करोड़ पचास लाख और पाँच पदों द्वारा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आदि का वर्णन करता है। ऐसे पूर्वगत श्रुत की मैं वंदना करता हूँ।

तित्थयर–चक्कवट्टी– वलदेवा– वासुदेवपडिसत्तू।
पंचसहस्सपयाणं एसकहा पढमअणिओगो ॥31॥

5000

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान तीर्थंकर चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिनारायण की कथाओं का पाँच हजार पदों के द्वारा वर्णन करता है, वह दृष्टिवाद अंग का प्रथमानुयोग नाम का अर्थाधिकार है।

विशेषार्थ - बारह प्रकार का पुराण, जिनवंशों और राजवंशों के विषय में जो सब जिनेन्द्रों ने देखा है या उपदेश दिया है, उस सबका वर्णन करता है। इनमें प्रथम पुराण अरहन्तों का, द्वितीय चक्रवर्तियों के वंश का, तृतीय वासुदेवों का, चतुर्थ विद्याधरों का, पाँचवाँ चारणवंश का, छठा प्रज्ञाश्रमणों का, सातवाँ कुरुवंश का, आठवाँ हरिवंश का, नौवाँ इक्ष्वाकुवंशजों का, दशवाँ काश्यपों का व काशिकोंका, ग्यारहवाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वादियों का और बारहवाँ नाथवंश का है।

सुण्णदुगं वाणवदी अडणवदीसुण्णदोविकोडिपयं।
जलगमणथंभणादी पडिवादइ जलगदा णेया ॥32॥
20989200

अर्थ :- जो श्रुतज्ञान दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पदों द्वारा जल में गमन, जलस्तम्भन के कारणभूत (मंत्र तंत्र, और तपश्चर्या रूप अतिशय) आदि का वर्णन करता है, वह जलगत चूलिका जानना चाहिए।

सुण्णदुगं बाणउदी अडणवदी सुण्ण दोविकोडिपयं।
भूगमणकारणादी मंतं तंतं मुणइ थलगमणं ॥33॥
20989200

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पदों द्वारा भूमि के भीतर गमन करने के कारणभूत मंत्र, तंत्र आदि का वर्णन करता है। वह स्थलगता चूलिका कहलाती है।

सुण्णदुगं वाणवदी अडणवदीसुण्ण दोविकोडिपयं।
इंदजालाइं जाणदि बहुभेयगइं इंदजालुत्ति ॥34॥
20989200

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पदों द्वारा *मायारूप इन्द्रजाल के कारणभूत तंत्र आदि का वर्णन करता है।* वह बहुत भेदों को प्राप्त मायागता नाम की चूलिका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुण्णदुगं वाणवदी अडणवदी सुण्ण दोविकोडिपयं।
सिंहहरिणचित्तादीविज्जपहावं च रूवगया ॥35॥
20989200

अर्थ :- जो श्रुतज्ञान दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पदों द्वारा सिंह, हरिण, चीता आदि आकार रूप से परिणमन करने वाली विद्या के प्रभाव रूप मंत्र, तंत्र आदि का वर्णन करता है, वह रूपगता चूलिका है।

विशेषार्थ - दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पदों से संयुक्त रूपगता चूलिका में चेतन और अचेतन द्रव्यों के रूप बदलने की कारणभूत विद्या, मंत्र, तंत्र एवं तप का तथा नरेन्द्रवाद, चित्र और चित्राभासादिका निरूपण किया जाता है।

सुण्णदुगं वाणवदी अडणवदी सुण्ण दोविकोडिपयं।
आयासे गमणाणं सुतंतमंतादिगयणगया ॥36॥
20989200

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पदों द्वारा आकाश में गमन करने के कारणभूत श्रेष्ठ मंत्र, तंत्र आदि का वर्णन करता है, वह आकाशगता चूलिका है।

छक्कं चदुणवचदुदहपदपरिमाणं तु सुण्णतयसहियं।
एसो पंचपयारो चूलियणामे णमंसामि ॥37॥
104946000

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :- उपर्युक्त पाँच प्रकार की चूलिकाओं के पदों का जोड़ दस करोड़ उन्नचास लाख छयालीस हजार पद है, उन सभी पाँच प्रकार की चूलिकाओं को नमस्कार करता हूँ।

पंचप्रकारचूलिका कथिता ॥ छ ॥

इस प्रकार पाँच प्रकार की चूलिकायें कहीं।

पणमामि जिणं वीरं जीवादीप्पायवयधुवाणं च।
भणियव्वं कोडिपयं उप्पायपुव्वं णमंसामि ॥38॥
10000000

अर्थ :- वीर जिन को नमस्कार करता हूँ पश्चात् जो श्रुत ज्ञान एक करोड़ पदों द्वारा जीव, पुद्गल आदि द्रव्य के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य का वर्णन करता है, वह उत्पाद पूर्व है, उसे मैं नमस्कार करता हूँ।

विशेषार्थ - जिसमें पुद्गल, काल और जीव आदिकों के जब जहाँ पर और जिस प्रकार से पर्याय रूप से उत्पादों का वर्णन किया जाता है वह उत्पादपूर्व कहलाता है।

छाणवदी लक्खपयं अत्थो तह अंग्गिभूसुययरं।
अग्गायणीयणामं भावविसुद्धिं णमंसामि ॥39॥
9600000

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान छयानवें लाख पदों के द्वारा अंगों के अग्र अर्थात् मुख्य पदार्थों का (तथा स्वसमय का) वर्णन करता है, उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अग्रायणीय पूर्व को भावों की विशुद्धि के लिए नमस्कार करता हूँ।

चक्कहरकेवलीणं सुरवइणाइंदपउरसत्तीओ।
सदरीलक्खाइं पयं पडिवायइ वीरियपवादो ॥40॥
7000000

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान चक्रवर्ती, केवली, सुरेन्द्र और नागेन्द्र की शक्ति का सत्तर लाख पदों द्वारा वर्णन करता है, उसे वीर्य प्रवाद पूर्व कहते हैं।

विशेषार्थ - जिसमें छद्मस्थ व केवलियों के वीर्य का सुरेन्द्र व दैत्येन्द्रों के वीर्य एवं ऋद्धि का, राजा चक्रवर्ती और बलदेवों के वीर्य लाभ का, द्रव्यों का, आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, क्षेत्रवीर्य, भववीर्य, ऋषिवीर्य, तपोवीर्य एवं सम्यक्त्व के लक्षण का कथन किया गया है, वह वीर्यप्रवादपूर्व है।

दव्वं अणेयभेयं अत्थि अ णत्थित्ति धम्मसूययरं।
सट्ठीसयसहसपयं अत्थीणत्थीदिपुव्वोयं ॥41॥
6000000

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान साठ लाख पदों के द्वारा द्रव्यों के अस्तित्व और नास्तित्व रूप अनेक प्रकार के धर्मों का भलीभांति कथन करता है, उसे अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व कहते हैं।

विशेषार्थ - जिसमें छहों द्रव्यों का भाव व अभाव रूप पर्याय के विधान से द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों नयों के अधीन एवं प्रधान व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्रधान भाव से सिद्ध स्वपर्याय और परपर्याय द्वारा साठ लाख पदों से निरूपण किया जाता है वह अस्ति नास्तिप्रवाद पूर्व है। अर्थात् जिसमें स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव के द्वारा छह द्रव्यों के अस्तित्व और पर द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव के द्वारा उनके नास्तित्व का निरूपण किया जाता है वह अस्ति-नास्तिप्रवादपूर्व है।

एऊणयकोडिपयं अडणाणपयारउदयहेऊणं।
तह धरणकारणेविय भणंति णाणप्पवादोयं ॥42॥

9999999

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान एक कम एक करोड़ पदों के द्वारा आठ प्रकार के ज्ञानों के विविध प्रकार, उनके उदय के कारण तथा उनके के कारणों को कहता है, उसे ज्ञानप्रवादपूर्व कहते हैं।

विशेषार्थ - जिसमें अनाद्यनिधन, अनादि-सनिधन, सादि-अनिधन और सादि-सनिधन आदि विशेषों से पाँचों ही ज्ञानों का प्रादुर्भाव, विषय स्थान इनका तथा ज्ञानियों का, अज्ञानियों का और इन्द्रियों का प्रधानता से विभाग बतलाया गया हो, वह ज्ञानप्रवाद कहलाता है।

कोडिपयं अडअहियं कुंठुड्डयदिड्डणवरिसविसेसा।
वेइंदियवयजोया भणंति सच्चप्पवादोयं ॥43॥

10000008

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान एक करोड़ आठ पदों के द्वारा कण्ठ, ओष्ठ, दांत आदि (जो आठ वचनसंस्कार के कारण भूत है) उनकी विशेषताओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को तथा द्वीन्द्रियादि जीवों के द्वारा प्रगट हुई वक्तृत्व पर्याय आदि का वर्णन करता है, उसे सत्यप्रवाद पूर्व कहते हैं।

विशेषार्थ - जिसमें वाग्गुप्ति, वचनसंस्कार के कारण, प्रयोग, बारह भाषा, वक्ता, अनेक प्रकार का असत्य वचन और दस प्रकार का सत्य सद्भाव इनकी प्ररूपणा की गई हो वह सत्यप्रवादपूर्व है।

जीवो णाणसुहादी कत्ताभुत्ताइधम्मसूययरो।
छव्वीसं कोडिपयं पणवहं अप्पप्पवादोयं ॥44॥

26000000

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान छब्बीस करोड़ पदों के द्वारा जीव ज्ञान सुखादिमय कर्त्ता, भोक्ता आदि धर्मों से युक्त है, इन सभी का वर्णन करता है, उसे आत्मप्रवाद पूर्व कहते हैं।

छहसुण्णं अट्ठदसं कम्मोदयवंधणिज्जरादीया।
पदसंख्याइपरूवं वंदे कम्मप्पवादोवि ॥45॥

18000000

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान एक करोड़ अस्सी लाख पदों की संख्या द्वारा कर्म के बन्ध, उदय, निर्जरा आदि की प्ररूपणा करता है, उस कर्म प्रवाद पूर्व की मैं वन्दना करता हूँ।

विशेषार्थ - जिसमें कर्म के बन्ध, उदय, उपशम और निर्जरा रूप पर्यायों का, अनुभाग, प्रदेश व अधिकरण तथा जघन्य, मध्यम एवं उत्कृष्ट स्थिति का निर्देश किया जाता है वह कर्मप्रवाद है अथवा जिसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईर्यापथकर्म आदि सात कर्मों का निर्देश किया जाता है वह कर्मप्रवादपूर्व कहलाता है।

पच्चक्खाण णिवत्ती दव्वं पज्जा णिरूविया जत्थ।
चुलसीदीलक्खपयं पच्चक्खाणं णमंसामि ।।46।।

8400000

अर्थ :- जिस श्रुत ज्ञान में चौरासी लाख पदों के द्वारा प्रत्याख्यान, नियम, द्रव्य, पर्याय निरूपित है उस प्रत्याख्यान पूर्व को मैं नमस्कार करता हूँ।

विशेषार्थ - जिसमें व्रत, नियम, प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, तप, कल्प, उपसर्ग, आचार, प्रतिमाविराधन, आराधन और विशुद्धि का उपक्रम, श्रमणता का कारण तथा द्रव्य और भाव की अपेक्षा परिमित व अपरिमित कालरूप प्रत्याख्यान का कथन हो वह प्रत्याख्यान नामक पूर्व है।

अट्ठंगणिमित्तमहाखुद्दं विज्ञाइं पंचसत्तसया।
दहलक्खं कोडिपयं विज्ञाणुवायं परूवंति ।।47।।

11000000

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान एक करोड़ दस लाख पदों के द्वारा अंतरिक्ष, भौम, अंग आदि आठ निमित्त, पाँच सौ महाविद्यायों तथा सात सौ अल्पविद्यायों की प्ररूपणा करता है, उसे विद्यानुवाद प्रवाद कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ - जिसमें समस्त विद्याओं, आठ महानिमित्तों, उनके विषय, राजुराशिविधि, क्षेत्र, श्रेणी, लोकप्रतिष्ठा, संस्थान और समुद्घात का वर्णन किया जाता है वह विद्यानुप्रवाद पूर्व कहलाता है। उनमें अंगुष्ठ प्रसेनादिक अल्पविद्यायें सात सौ और रोहिणी आदि महाविद्यायें पाँच सौ हैं। अंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन और चिह्न ये आठ महानिमित्त हैं। उनका विषय लोक है। क्षेत्र का अर्थ आकाश है। वस्त्र तन्तु के समान अथवा चर्म के अवयव के समान अनुक्रम से ऊपर, नीचे और तिरछे रूप से व्यवस्थित आकाश प्रदेशों की पंक्तियाँ श्रेणियां कहलाती है।

छव्वीसं सयसुण्णं तेसट्ठिसलाहपुरिसकल्लाणं।
पदसंखा विण्णेया कल्लाणणामं परूवंति ॥48॥

260000000

अर्थ :- जिस श्रुत ज्ञान में तीर्थंकर, बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती आदि त्रेसठ शलाका पुरुषों के गर्भावतरण आदि कल्याणकों की प्ररूपणा की जाती है, उसे कल्याणवाद पूर्व कहते हैं। इसमें छब्बीस करोड़ पद जानना चाहिए।

विशेषार्थ - सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारागणों का संचार, उत्पत्ति व विपरीत गति का फल, शकुनव्याहृति अर्थात् शुभाशुभ शकुनों का फल, अरहन्त, बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती आदिकों के गर्भ में आने आदि के महाकल्याणकों की जिसमें प्ररूपणा की गई हो वह कल्याणवाद नामक पूर्व है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तयदसकोडी य पयं पाणापण्णाणुवेदमंतो य।
गारुडविज्ञा भासइ पाणावायं णमंसामि ॥49॥

130000000

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान तेरह करोड़ पदों के द्वारा उच्छ्वास निःश्वास प्राणों की वृद्धि एवं हानि का तथा विष चिकित्सा का वर्णन करता है, उसे प्राणावाय पूर्व कहते हैं।

विशेषार्थ - जिसमें शरीर चिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म अर्थात् भस्मलेपनादि, जांगुलिप्रक्रम अर्थात् विषचिकित्सा और प्राण व अपान वायुओं का विभाग, इनका विस्तार से वर्णन किया गया हो वह प्राणावाय पूर्व है। प्राणावाय पूर्व उच्छ्वास आयुप्राण, इन्द्रियप्राण और पराक्रम अर्थात् बलप्राण इन प्राणों की वृद्धि एवं हानि का वर्णन करता है।

णवकोडिपयपमाणं छंदोलंकारसकलविण्णाणं।
भासइ अण्णेकविहं किरियविसालं णमंसामि ॥50॥

90000000

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान नौ करोड़ पदों के द्वारा छन्द, अलंकार आदि सम्पूर्ण विज्ञान को अनेक प्रकार से कहता है उस क्रियाविशाल पूर्व को मैं नमस्कार करता हूँ।

विशेषार्थ - जिसमें लेखन आदि बहत्तर कलाओं का स्त्री संबंधी चौंसठ गुणों का, शिल्पों का, काव्य संबंधी गुण दोषक्रिया का, छन्द रचने की क्रिया और उसके फल के उपभोक्ताओं का वर्णन किया गया हो वह क्रियाविशालपूर्व कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोयग्गसारभूयं सिद्धिसुहुप्पायणे समत्थोयं।
पंचघणं छहसुण्णं पणयव्वो लोयसारोयं ॥51॥
125000000

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान बारह करोड़ पचास लाख पदों के द्वारा लोक के सारभूत मोक्ष सुख और उनके उपायों का मुख्य रूप से वर्णन करता है। उसे लोक बिन्दुसार जानना चाहिए।

विशेषार्थ - जिसमें आठ प्रकार के व्यवहारों, चार बीजों और क्रियाविभाग का उपदेश किया गया हो वह लोकबिन्दुसार है।

अट्ठुत्तरुसयकोडी अड्डट्ठीलक्खसहसछप्पण्णा।
पंचप्पयअहियाणं वारसमो दिट्ठिवादोयं ॥52॥
1086856005

अर्थ :- जो श्रुत ज्ञान एक अरब आठ करोड़ अड़सठ लाख छप्पन हजार पाँच पद रूप है वह सम्पूर्ण दृष्टिवाद अंग है।

पणअहियं सुण्णदुगं अडपणतयअडदुएयएयं च।
वारसअंगाइसुदं णमियं महहेमयंदेण ॥53॥
1128358005

अर्थ :- द्वादशांग रूप अंग श्रुत का प्रमाण एक सौ बारह करोड़ तेरासी लाख अट्ठावन हजार पाँच पद प्रमाण है। उस श्रुत को मैं हेमचंद्र प्रणाम करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पणणवदीअहियसयं चउदहपुव्वाइं वत्थुपरिसंखा।
एक्किक्कम्मि य वत्थू वीसं वीसं च पाहुडा भणिया ॥54॥

195 वस्तु

वस्तुएकप्रतिपाहुड 20 पाहुडसंख्या 3900 पाहुड 1 प्रतिपाहुड जातप्रतिपाहुड 93600 प्रतिपाहुड 1 प्रतिअनुयोगाः 29 जात अनुयोगसंख्या 2296900 अनुयोगपाहुडसंख्या

अर्थ :- चौदह पूर्वों की सर्व वस्तुओं का प्रमाण एक सौ पचानवें होता है। एक-एक वस्तु में बीस-बीस प्राभृत कहे गये हैं।

विशेषार्थ - इन चौदह पूर्वों की सर्व वस्तु मिलकर एक सौ पचानवे होती हैं और प्राभृतों का प्रमाण तीन हजार नौ सौ होता है।

चौदह पूर्व में वस्तुओं की संख्या क्रम से 10, 14, 8, 18, 12, 12, 16, 20, 30, 15, 10, 10, 10, 10 होती है। इन सब वस्तुओं का जोड़ 195 होता है।

एक एक वस्तु में बीस बीस प्राभृत कहे गये हैं। पूर्वों में वस्तुएँ सम व विषम हैं, किन्तु प्राभृत सम हैं। पूर्वों के पृथक्-पृथक् प्राभृतों का योग यह है - 200, 280, 160, 360, 240, 240, 320, 400, 600, 300, 200, 200, 200, 200। सब वस्तुओं का योग एक सौ पचानवैं होता है। सब प्राभृतों का योग (195 X 20) = तीन हजार नौ सौ मात्र होता है।

पणरससोलसपणपण्णतिकिदिसुण्णसत्ततयसत्ता।
सुण्णं चदुचदुसगछहचदुचदुअडइगिसु अक्खरया ॥55॥

॥18446744073709551615 ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :- श्रुत ज्ञान दो प्रकार का है। अंग प्रविष्ट और अंगबाह्य। इन दोनों अंग प्रविष्ट और अंगबाह्य श्रुत के समस्त 184467440 737 09551615 अपुनरुक्त अक्षर हैं।

सव्वसुयं अक्खरसं मज्झिमपदभाइयं हरेहु णियमेण।
पयसंखा सा जाणसु सेससुदं अंगबाहिरयं ॥56॥
॥18446744073629443440 ॥

द्वादशानामंगानां सकलश्रुताक्षरसंख्याप्रमाणं।

अर्थ :- सकल श्रुत अंग बाह्य और अंग प्रविष्ट रूप अपुनरूक्त अक्षरों की जो संख्या अर्थात् 18446744073709 551615 इस संख्या में से अंग बाह्य के 80108175 अक्षरों की संख्या कम कर देने पर द्वादशांग के सकल श्रुत के अक्षरों का प्रमाण 18446744073629 443440 प्राप्त होता है।

अडअडसीदीसगणहतहतयअडचदुतय तहय सोलसया।
मज्झिमपदेसु अंका एसो भासंति तित्थयरा ॥57॥
16348307888 मध्यमपदाक्षरसंख्या।

अर्थ :- सोलह सौ चौंतीस करोड़ तेरासी लाख अठत्तर सौ अठासी संयोग अक्षरों का एक मध्यम पद होता है।

एकावण्णं कोडी लक्खा अट्ठेव सहसचुलसीदी।
सयछक्कं णायव्वं साढाइकवीसपयगंथा ॥58॥
510884621 मध्यमग्रंथप्रमाणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :- मध्यम ग्रंथ के पदों की संख्या इक्यावन करोड़ आठ लाख चौरासी हजार छह सौ इक्कीस जानना चाहिए।

पण्णत्तरिसयसहियं अडदहसीदी मुणेहु अंककमो।
बाहिरसुदेसु अक्खर तं चउदह पयण्णयं णमामि ॥59॥
80108175 अंगबाह्यश्रुतअक्षरसंख्या

अर्थ :- आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पचहत्तर 80108175 समस्त अंग बाह्य के अक्षरों का प्रमाण है, उन सब अंग बाह्य श्रुत के अक्षरों को मैं प्रणाम करता हूँ।

अडतीसातिण्णिसयासहस्सपण्णासलक्खवे मुणहु।
पणदहअक्खरसहिया वाहिरसुदगंथया भणिया ॥60॥

ग्रंथ 2503380 अक्षर 15 अंगबाह्यश्रुताक्षरग्रंथप्रमाणं

अर्थ :- अंग बाह्य के समस्त श्लोकों की संख्या पच्चीस लाख तीन हजार तीन सौ अस्सी तथा शेष 15 अक्षर प्रमाण जानना चाहिए।

सामाइयथुइवंदणपडिक्कमणं वेणइयकिदिकम्मं।
कालियउत्तरज्झयणं कप्पं तह कप्पकप्पं च ॥61॥

महकप्पं पुंडरियं महपुंडरियं असीदिया चेव।
वंदे चउद्दसेदे अण्णेवि य अंगबज्झसुदे ॥62॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :- सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प्य, महाकल्प, पुंडरीक, महापुंडरीक, निषिद्धिका इन अंग बाह्य श्रुत के चौदह भेदों की तथा अन्य भी अंग बाह्य श्रुत की वंदना करता हूँ।

विशेषार्थ - सामायिक प्रकीर्णक - सामायिक प्रकीर्णक द्रव्य सामायिक, क्षेत्र सामायिक, काल सामायिक और भाव सामायिक के भेद से सामायिक चार प्रकार की है। अथवा नामसामायिक, स्थापनासामायिक, द्रव्यसामायिक, क्षेत्रसामायिक, कालसामायिक और भावसामायिक इन छह भेदों द्वारा समता भाव के विधान का वर्णन करना सामायिक है। सचित्त और अचित्त द्रव्यों में राग और द्वेष का निरोध करना द्रव्यसामायिक है। ग्राम, नगर, खेट, कर्वट, मंडव, पट्टन, द्रौणमुख और जनपद आदि में रागद्वेष का निरोध करना अथवा अपने निवासस्थान में साम्पराय (कषाय) का निरोध करना क्षेत्रसाभायिक है। बसन्त आदि छह ऋतुविषयक कषाय का निरोध करना कालसामायिक है। जिसने समस्त कषायों का निरोध कर दिया है तथा मिथ्यात्व का वमन कर दिया है और जो नयों में निपुण है, ऐसे पुरुष को बाधारहित और अस्खलित जो छह द्रव्यविषयक ज्ञान होता है वह भावसामायिक है। अथवा तीनों ही संध्याओं में या पक्ष और मास के सन्धि दिनों में या अपने इच्छित समय में बाह्य और अंतरंग समस्त पदार्थों में कषाय का निरोध करना सामायिक है। सामायिक नामक प्रकीर्णक इस प्रकार काल का आश्रय करके और भरतादि क्षेत्र, संहनन तथा गुणस्थानों का आश्रय करके परिमित और अपरिमित रूप से सामायिक की प्ररूपणा करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यों - तिर्यंचों आदि के शुभ-अशुभ नामों में रागद्वेष का निरोध करना नाम सामायिक है। सुन्दर स्थापना या असुन्दर स्थापना में रागद्वेष का निरोध करना स्थापना सामायिक है। जैसे कुछ मूर्तियाँ सुस्थित रहती है। सुप्रमाण तथा सर्व अवयवों से सम्पूर्ण होती है तदाकाररूप तथा मन को आह्लाद करने वाली होती है तो कुछ मूर्तियाँ दुःस्थित प्रमाणरहित, सर्व अवयवों से परिपूर्णता रहित, अतदाकार भी होती हैं (मूर्ति निर्माता के यहाँ दोनों ही प्रकार की जिनमूर्तियाँ देखी जा सकती हैं) इनमें रागद्वेष का अभाव होना स्थापना सामायिक है।

चतुर्विंशतिस्तवप्रकीर्णक - चतुर्विंशतिस्तवप्रकीर्णक अर्थाधिकार उस उस काल सम्बन्धी चौबीस तीर्थंकरों की वन्दना करने की विधि, उनके नाम, संस्थान, उत्सेध, पाँच महाकल्याणक, चौंतीस अतिशयों के स्वरूप और तीर्थंकरों की वन्दना की सफलता का वर्णन करता है।

वंदनाप्रकीर्णक - वंदनाप्रकीर्णक एक जिनेन्द्र देव सम्बन्धी और उन एक जिनेन्द्र देव के अवलम्बन से जिनालय सम्बन्धी वंदना का वर्णन करता है।

प्रतिक्रमणप्रकीर्णक - प्रतिक्रमणप्रकीर्णक दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक और औत्तमस्थानिक इस प्रकार प्रतिक्रमण सात प्रकार का है। इन सभी प्रतिक्रमणों का वर्णन करता है।

विनयप्रकीर्णक - विनय पाँच प्रकार का है ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय, तपविनय और औपचारिकविनय। जो पुरुष गुणों में अधिक है उनमें नम्रवृत्ति का रखना विनय है। भरत, ऐरावत व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदेह में साधने योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का आश्रय कर ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय, तपविनय, उपचारविनय इन पाँचों विनयों के लक्षण भेद और फल का कथन विनय प्रकीर्णक में है।

कृतिकर्मप्रकीर्णक - जिनदेव, सिद्ध, आचार्य और उपाध्याय को वन्दना करते समय जो क्रिया की जाती है, वह कृतिकर्म है। उस कृतिकर्म के आत्माधीन होकर किये गये तीन बार प्रदक्षिणा, तीन अवनति, चार नमस्कार और बारह आवर्त आदि रूप लक्षण भेद तथा फल का वर्णन कृतिकर्म प्रकीर्णक करता है।

दशवैकालिक प्रकीर्णक - विशिष्ट काल विकाल है। उसमें जो विशेषता होती है वह वैकालिक है। वे वैकालिक दस है। उन दस वैकालिकों का दशवैकालिक नाम का अर्थाधिकार (प्रकीर्णक) है। यह द्रव्य क्षेत्र काल और भाव का आश्रय कर आचारविषयक विधि व भिक्षाटन विधि की प्ररूपणा करता है।

उत्तराध्ययन प्रकीर्णक - जिसमें अनेक प्रकार के उत्तर पढ़ने को मिलते हैं वह उत्तराध्ययन प्रकीर्णक है। चार प्रकार के उपसर्गों (देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यंचकृत, अचेतनकृत) और बाईस परीषहों (क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्नता, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन ये बाईस परीषह हैं) के सहन करने के विधान का और उनके सहन करने के फल का तथा इस प्रश्न के अनुसार यह उत्तर होता है। इसका वर्णन करता है।

कल्प्यव्यवहार प्रकीर्णक - कल्प्य नाम योग्य का है और व्यवहार नाम आचार का है। योग्य आचार का नाम कल्प्यव्यवहार है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधुओं को पीछी, कमण्डलु कवली (ज्ञानोपकरण विशेष) और पुस्तकादि जो जिस काल में योग्य हो उसकी प्ररूपणा करता है तथा अयोग्य सेवन और योग्य सेवन न करने के प्रायश्चित्त की प्ररूपणा करता है।

कल्प्याकल्प्य प्रकीर्णक – द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की अपेक्षा मुनियों के लिए यह योग्य है और यह अयोग्य है, इस तरह इन सबका कथन करता है। साधुओं के जो योग्य है और जो योग्य नहीं है उन दोनों की ही द्रव्य क्षेत्र और काल का आश्रय कर प्ररूपणा करता है। साधुओं के और असाधुओं के जो व्यवहार करने योग्य है और जो व्यवहार करने योग्य नहीं है इन सबका द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव का आश्रय कर कल्प्याकल्प्य प्रकीर्णक कथन करता है।

महाकल्प्य प्रकीर्णक – दीक्षा ग्रहण, शिक्षा, आत्मसंस्कार, सल्लेखना और उत्तमस्थानरूप आराधना को प्राप्त हुए साधुओं के जो करने योग्य है उसका द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का आश्रय लेकर प्ररूपणा करता है। काल और संहनन का आश्रयकर साधुओं के योग्य द्रव्य और क्षेत्र आदि का वर्णन करता है। उत्कृष्ट संहननादि विशिष्ट द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव का आश्रय लेकर प्रवृत्ति करने वाले जिनकल्पी साधुओं के योग्य त्रिकालयोग आदि अनुष्ठान का और स्थविरकल्पी साधुओं की दीक्षा शिक्षा, गणपोषण, आत्म संस्कार, सल्लेखना आदि का विशेष वर्णन है। भरत ऐरावत और विदेह तथा वहाँ रहने वाले तिर्यंच व मनुष्यों के देवों के एवं अन्य द्रव्यों के भी स्वरूप का छह कालों का आश्रय कर निरूपण करता है।

पुण्डरीक प्रकीर्णक – भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पवासी और वैमानिक सम्बंधी इन्द्र और सामानिक आदि में उत्पत्ति के कारणभूत दान, पूजा, शील, तप, उपवास, सम्यक्त्व, संयम और अकामनिर्जरा का तथा उनके उपपाद स्थान और भवनों का वर्णन करता है। अथवा छह कालों से विशेषित देव असुर और नारकियों में तिर्यंच व मनुष्यों की उत्पत्ति की प्ररूपणा करता है। इस काल में तिर्यंच और मनुष्य इन कल्पों व इन पृथिवियों में उत्पन्न होते हैं इसकी यह प्ररूपणा करता है।

महापुण्डरीक प्रकीर्णक - महापुण्डरीक प्रकीर्णक काल का आश्रय कर देवेन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव व वासुदेवों में उत्पत्ति का वर्णन करता है। अथवा समस्त इन्द्र और प्रतीन्द्रों में उत्पत्ति के कारणरूप तपोविशेष आदि आचरण का वर्णन करता है। अथवा देवों की देवियों में उत्पत्ति के कारणभूत तप, उपवास आदि का प्ररूपण यह प्रकीर्णक करता है।

निषिद्धिका प्रकीर्णक - प्रमाद जन्य दोषों के निराकरण करने को निषिद्धि कहते हैं और इस निषिद्धि अर्थात् बहुत प्रकार के प्रायश्चित के प्रतिपादन करने वाले प्रकीर्णक को निषिद्धिका कहते हैं। अथवा काल का आश्रय कर प्रायश्चित विधि और अन्य आचरण विधि की प्ररूपणा करता है।

देसावहिछब्भेयं परमावहिसव्वअवहिचरिमतणुं।
मणपज्जवसंजमिणं घादिखए केवलं होदि ॥63॥

अर्थ :- देशावधि ज्ञान के छह भेद है। परमावधि और सर्वावधि ज्ञान चरम शरीरियों को होता है। मन:पर्यय ज्ञान सकल संयमी को प्रकट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है तथा घातियाँ कर्मों के क्षय से केवलज्ञान होता है।

विशेषार्थ - कृष्णपक्ष के चन्द्र मण्डल के समान जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर वृद्धि और अवस्थान बिना निःशेष विनष्ट होने तक घटता ही जाता है वह **हीयमान अवधिज्ञान** है। जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर शुक्ल पक्ष के चन्द्र मण्डल के समान, प्रतिसमय अवस्थान के बिना जब तक अपने उत्कृष्ट विकल्प को प्राप्त होकर अगले समय में केवलज्ञान को उत्पन्न कर विनष्ट नहीं हो जाता तब तक बढ़ता ही रहता है वह **वर्धमान अवधिज्ञान** है। जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर कदाचित बढ़ता है कदाचित घटता है और कदाचित अवस्थित रहता है, वह **अनवस्थित अवधिज्ञान** है। जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर वृद्धि हानि बिना दिनकरमण्डल के समान केवलज्ञान के उत्पन्न होने तक अवस्थित रहता है वह **अवस्थित अवधिज्ञान** है। जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर जीव के साथ जाता है वह अनुगामी अवधिज्ञान है। जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर जीव के साथ नहीं जाता है वह **अननुगामी अवधिज्ञान** है।

दुसमसुसमावसाणो दुसमपएसेवि कालपरिमाणे।
सुदकेवलिपरिवाडी आयण्णहु पयदचित्तेण ॥64॥

अर्थ :- दुषमा-सुषमा काल के अर्थात् चतुर्थ काल के समाप्त होने पर दुषमा नामक पंचमकाल के प्रवेश होने पर श्रुतकेवलियों की परम्परा को सावधान होकर सुनो।

आहुट्ठमासहीणे वासचउक्कंहि तुरियकालंते।
कत्तियकिसण चउद्दसि वीरजिणो सिद्धिसंपत्तो ॥65॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :- चतुर्थ काल के चार वर्ष में से तीन मास और पन्द्रह दिन शेष रहने पर अर्थात् चतुर्थकाल के तीन वर्ष, आठ मास और पन्द्रह दिन शेष रहने पर कार्तिक मास में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को महावीर जिनेन्द्र सिद्धि को प्राप्त हुए।

केवलणाणुप्पण्णो तहि समए गोयमस्स गणवइणो।
णिव्वाणं समएणं णाणो य सुधम्म जाणेहु ॥66॥

अंतेसु जंबुसामी पंचमणाणी य तहय णिव्वाणो।
वासट्ठि वरिसकालो अणुवट्टिय तिण्णि केवलिणो ॥67॥

वर्ष 62

अर्थ :- जिस दिन भगवान महावीर सिद्ध हुए उसी दिन गौतम-गणधर केवलज्ञान को प्राप्त हुए। पुनः गौतम स्वामी के सिद्ध होने पर सुधर्म स्वामी केवली हुए। सुधर्म स्वामी के कर्मनाश करने पर जम्बू स्वामी केवलज्ञान को प्राप्त हुए। जम्बू स्वामी के सिद्ध होने के पश्चात् फिर अनुबद्ध केवली नहीं हुए। गौतमादिक तीन केवलियों के धर्म प्रवर्तन काल का प्रमाण बासठ वर्ष है।

अणयारअंतकेवलिसिरिहरजयणो सुसिद्धिअणुसरिआ
चारणमुणी य चरिमं वंदेह सुपासयं णाम ॥68॥

अर्थ :- केवल ज्ञानियों में अन्तिम केवली श्रीधर सिद्ध हुए और चारण ऋषियों में सुपार्श्वचन्द्र नामक ऋषि अन्तिम हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वइरिजसणामधेओ पण्णयसवणाण चरिम जाणेहु।
सिरिणामावहिणाणी अंतिल्लो तित्थ पणमिओ ॥69॥

अर्थ :- प्रज्ञा श्रमणों में वज्रयश ऋषि अन्तिम हुए और अवधि ज्ञानियों में अन्तिम श्री नामक ऋषि हुए उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ।

चरिमो मउडधरीसो णरवइणा चंदगुत्तणामाए।
पंचमहव्वयगहिया अवरिंरिक्खाय ओछिण्णा ॥70॥

अर्थ :- मुकुट धरों में अन्तिम राजा चन्द्रगुप्त ने महाव्रत रूप जिनदीक्षा ग्रहण की। इसके पश्चात् किसी मुकुट धारी ने प्रवज्या ग्रहण नहीं की।

णंदीं य णंदिमित्तो अवरज्जिउ पुणु गुवद्धणो णामो।
पंचमउ भद्दवाहो पुव्वंगधरा णमंसामि ॥71॥

अर्थ :- प्रथम नन्दी, द्वितीय नन्दि मित्र, तृतीय अपराजित, चतुर्थ गोवर्धन और पंचम भद्रबाहु ये पाँच चौदह पूर्व ज्ञान के धारक हुए, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

वाससयं तह कालो परिगलिओ वड्ढमाणतित्थेसु।
एसो भवियं जाणहु भरहे सुदकेवली णत्थि ॥72॥

वर्ष 100 वर्द्धमाने निर्व्वाणे गते सति पश्चात्
श्रुतकेवली न संजातः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :- वर्द्धमान भगवान के तीर्थ के 100 वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् (उपयुक्त पाँच श्रुत केवलियों के बाद) कोई भी श्रुत केवली नहीं हुआ।

विसाहणामो पढमो पोटिल्लो जयउखत्तिओ णागो।
सिद्धत्थो धिदसेणो विजओ णवमो य बुद्धिल्लो ॥73॥

गंगो सुधम्मुणामो एयारसमुणि जयम्मि विक्खाया।
तेसीदिसयं वासं कालो दसपुव्वधर णेया ॥74॥

वर्ष 183 ॥

अर्थ :- प्रथम विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव, और सुधर्म ये ग्यारह आचार्य दस पूर्वधारी हुए हैं। परम्परा से प्राप्त इन सबका काल एक सौ तेरासी वर्ष प्रमाण है।

णरवत्तो जयपालो पुंडरिउ धुदसेणु कुंसणामा य।
एयारसअंगधरा वासं वीसहियविण्णिसया ॥75॥

वर्ष 220 ॥

अर्थ :- नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस ये पाँच आचार्य वीर जिनेन्द्र के तीर्थ में ग्यारह अंग के धारी हुए। इन सब के काल का प्रमाण दो सौ बीस वर्ष है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुणिपुंगवो सुभद्दो पुणु जसभद्दो तहेव जसवाहो।
लोहो णाम अलोहो पढमंगधरावि चत्तारि ॥76॥

अर्थ :- प्रथम समुद्र, फिर यशोभद्र, यशोबाहु और चतुर्थ लोहार्य ये चार आचार्य प्रथम अंग आचारंग के धारक हुए। पश्चात् सम्पूर्ण आचारांग को धारण करने वालों का अभाव हो गया।

विणययरो सिरिदत्तो सिवदत्तो अवुहदत्त मुणिवसहा।
अंगं पुव्वं मज्झे देसधरा चारि जाणेह ॥77॥

अर्थ :- लोहार्य के पश्चात् विनयधर, श्री दत्त, शिवदत्त और अर्हदत्त ये चार आचार्य अंगों और पूर्वों के एक देश ज्ञाता हुए।

अट्ठदसं अहियाणं वाससयं तहय कालवोलीणो।
अवसप्पइ सुदपवरा अंगधरा भरहे वुच्छिण्णा ॥78॥

वर्ष 118

अर्थ :- एक सौ अठारह वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् श्रुत प्रवर अंगधरों की परम्परा भरत क्षेत्र से व्युच्छिन्न हो गई।

गुत्तिमयं लेसाणं वासाणं परगलियमित्तमादी य।
देसूणय देसधरा मुणिअरुहाभणियणामा य ॥79॥

वर्ष 683

अर्थ :- वीर निर्वाण के पश्चात् (62 + 100 + 181 + 220 +

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

118) समुदित छः सौ तेरासी वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् अंगांशधर ज्ञान को धारण करने वाले अर्हद् (नाम) के मुनि हुए।

आयरिउ भद्दवाहो अट्ठंगमहणिमित्तजाणयरो।
णिण्णासइ कालवसेसचरिमो हु णिमित्तओ होदि ॥80॥

अर्थ :- अष्टांग महानिमित्त के ज्ञानी आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) चरम निमित्तधर हुए। इनके पश्चात् कोई भी निमित्त ज्ञानी नहीं हुआ।

उज्जिंते गिरिसिहरे धरसेणो धरइ वयसमिदिगुत्ती।
चंदगुहाइणिवासी भवियहु तसु णमहु पयजुयलं ॥81॥

अग्गायणीयणामं पंचमवत्थुगदकम्मपाहुडया।
पयडिट्ठिदिअणुभागो जाणंति पदेसबंधोवि ॥82॥

अर्थ :- व्रत, समिति, गुप्ति को धारण करने वाले ऊर्जयंत (गिरनार) गिरि की शिखर पर चन्द्र गुफा में निवास करने वाले महामुनि धरसेन हुए। वे अग्रायणीय पूर्व के पंचम वस्तु के कर्म प्राभृत के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध के ज्ञाता थे। भव्य जीव उनके चरण युगल को नमस्कार करो।

जं जाणेइ सुदंतं विहुभुयबलि पुप्फयंतणामजई।
धरसेण हु अवसाणे सुददेसधरा य विण्णि मुणी ॥83॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :- आचार्य धरसेन ने श्रुत की परम्परा का मूल विच्छेद होते हुए जानकर योग्य भूतबलि और पुष्पदंत नाम के दो यतियों को उस कर्म प्राभृत का अध्ययन कराया। इस प्रकार आचार्य धरसेन के समाधि मरण के पश्चात् श्रुत के अंगांशी ज्ञान को धारण करने वाले दो मुनि हुए।

गुणजीवादिपरूवण खुल्लयसामित्तवंधणामाय।
वेयसवग्गणखंडा छट्ठो महबंधु जाणेह ॥84॥

एवं छह अहियारा तीससहस्साणुसुत्तरेरहिया।
अप्पमई होंति णरा तो पुच्छय लेहिओ गंथो ॥85॥

अर्थ :- जीव के गुणस्थान की प्ररूपणा करने वाला प्रथम खण्ड जीवट्ठाण, दूसरा खुद्दाबन्ध, तीसरा बंधसामित्तविचय, चौथा वेदना, पंचम वर्गणा और छट्म खण्ड महाबंध तीस हजार श्लोकों से सुशोभित जानना चाहिए। आगामी काल में मनुष्य अल्पमति को धारण करने वाले होंगे इसलिए भूतबलि-पुष्पदंत मुनिराजों ने प्राप्त हुए श्रुत ज्ञान को प्रश्नोत्तर शैली में ग्रंथ रूप से लिपिबद्ध किया।

भूयबलिपुप्फयंतो चउविहसंघेण संजुदो तत्थ।
जिट्ठसियपंचमिदिणे पुत्थयपडिठावणा विहिया ॥86॥

अट्ठविहा कयपूया तद्दिणि सुयपंचमीदि संजादा।
सुदविणएणं लब्भइ अचलंपि केवलं णाणं ॥87॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :- जेठ सुदी पंचमी के दिन, भूतबलि और पुष्पदंत चर्तुविध संघ ने उस श्रुत की पुस्तक (ग्रंथ) के रूप में स्थापना की। इसी दिन अष्ट प्रकार की पूजा की गई इसलिए वह दिन श्रुत पंचमी इस नाम से जाना जाने लगा। श्रुत की विनय से शाश्वत केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है।

सदरीसहस्स धवलो जयधबलो सट्ठिसहसबोधव्वो।
महबंधो चालीसं सिद्धंततयं अहं वंदे ॥88॥

अर्थ :- 70,000 हजार श्लोक प्रमाण धवला, 60,000 हजार श्लोक प्रमाण जयधवला तथा 40,000 हजार श्लोक प्रमाण महाबंध इन सिद्धांतत्रय ग्रंथों की मैं वंदना करता हूँ।

विशेषार्थ - उपर्युक्त गाथा में पाठ भेद संभव है क्योंकि धवला टीका 72,000 हजार श्लोक प्रमाण है। महाबंध 30,000 हजार श्लोक प्रमाण हैं।

रइओ तिलंगदेसे आरामे कुंडणयरिसुपसिद्धे।
चंदप्पहजिणिमंदिरि रइया गाहा इमे विमला ॥89॥

अर्थ :- तैलंग देश के कुण्डनगर के उद्यान में चन्द्रप्रभ जिनालय में रहते हुए इन निर्मल गाथाओं की मैंने रचना की।

मयरद्धयमहमहणो मायामयमोहमयणपरिहरणो।
चंदप्पहु जिणणाहो देउ सुहं सयलसंघस्स ॥90॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :- कामदेव के दर्प को दलन करने वाले, माया, मान और मोह के प्रभाव को हरण करने वाले, चन्द्रप्रभु भगवान् समस्त संघ के लिए सुख प्रदान करे।

जयउ जयसयवंतो जयजयसद्देण असुरसुरणमिओ।
चंदप्पहुजिणणाहो सुहपरिणामं महं देउ ॥91॥

अर्थ :- यशस्वी, जय जय शब्द की ध्वनि द्वारा असुरेन्द्र तथा सुरेन्द्र द्वारा पूजित, चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र जयवंत होवे। तथा मुझे शुभ रूप परिणाम देवें।

सिद्धंतिरामणंदी महापसाएण रयउ सुरबंधो।
लइओ संसारफलो देसजई हेमयंदेण ॥92॥

अर्थ :- मुझ देशव्रती हेमचन्द ने सिद्धान्तिक रामनंदि गुरु के प्रसाद से यह छन्दबद्ध रचना की। तथा त्रिवर्ग रूप संसार सुख को प्राप्त किया।

अक्खरमत्ताहीणं जं अत्थविवज्जियं मया भणियं।
तं खमउ वीयराओ मम पुणु कम्मक्खयं होउ ॥93॥

अर्थ :- अक्षर, मात्रा से रहित तथा अर्थ हीन जो कुछ मुझसे कहा गया हो उसको वीतरागी (मुनि) क्षमा करें तथा मेरे कर्मों का क्षय हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो पढइ सुणइ गाहा अत्थे जाणेइ कुणइ सद्दहणं।
आसण्णभव्वजीओ सो पावइ परमणिव्वाणं ॥94॥

अर्थ :- जो इन गाथाओं को पढ़ता है, सुनता है तथा अर्थ को जानते हुए श्रद्धान करता है, वह निकट भव्य जीव परमसुख रूप निर्वाण को प्राप्त करता है।

इति श्री ब्रह्महेमचंद्रविरचितः श्रुतस्कंधः समाप्तः

♦♦♦

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org